शुन्यता के राह पर

जीवन की व्यस्तता और,
अशांत वातावरण से दूर,
कहीं जीवन के उस पार,
चलो मेरे मर अब फिर वहीं,
शुन्यता के चिर परिचित राह पर।

समय चल चुका है अबतक,
अनन्त चालें अपनी,
कभी सुख तो कभी दुख,
बांध रखी हैं इसने,
यही तक लक्ष्मण रेखा अपनी,
सुख–दुख का न हो,
नामो–निशां जहां मेरे दोस्त,
चलो मेरे मन अब फिर वही,
शुन्यता के चिरपरिचित राह पर।

यह कैसी स्वतंत्रता है,
जहां चंद सांसों के लिए,
अपना जमीर गिरवी रखना पडता है,
कैसा है यह विखंडित भूखंड,
जिसे मजबूरी में हमें भी,
अपना वतन कहना पडता है,
लोक परलोक की कल्पना से परे,
चलो मेरे मन अब फिर वही,
शुन्यता के चिरपरिचित राह पर।

जाति–धर्म जैसे असंख्य,
विद्वेषों से बहुत दूर,
जहां न हम अपमानित हों,
और न हमारा अस्तित्व विखंडित हो,
वास करता हो मानव जहां,
मानव का रूप धारण कर,
चलो मेरे मन अब फिर वहीं,
शुन्यता के चिरपरिचित राह पर।